राजकोषीय परिसंघवाद: सिद्धांत और व्यवहार *

एन के सिंह

इस प्रतिष्ठित एल के झा स्मारक व्याख्यान में बोलना मेरे लिए विशेष सम्मान और गौरव की बात है। मेरे लिए कई कारणों से यह एक व्याख्यान से बढ़कर है। प्रथम और सर्वोपरि, श्री एल के झा (मरे लिए एलके अंकल), के साथ मेरा जुड़ाव बचपन के दिनों का है। वे न सिर्फ़ उसी जिले के थे, जहाँ से मेरे पिता थे, बल्कि वे दोनों साथ-साथ लंदन गए – वे कैंब्रिज गए जबकि मेरे पिता जी लंदन स्कूल ऑफ़ इकनॉमिक्स में। दोनों ने एक ही साथ वर्ष 1936 में इंडियन सिविल सर्विस ज्वाइन की। जब तक मैंने सिविल सर्विस ज्वाइन की, प्रशासक, नीति निर्माता तथा अर्थशास्त्र व वित्त के जानकार के रूप में एलके की ख्याति दूर-दूर तक फ़ैल चुकी थी। उनके बारे में कई किस्से हैं जिनका जिक्र मैंने अपनी आगामी आत्मकथा में किया है और यहाँ दोहराना नहीं चाहूंगा। तथापि, एक को बताने से नहीं रोक पा रहा हूँ।

जापान में भारतीय दूतावास में अर्थ व वाणिज्य मंत्री के रूप में मेरे कार्य-काल में एलके के नेतृत्व में 1984 में वरिष्ठ नीति निर्माताओं और वरिष्ठ कॉरपोरेट्स का एक उपक्रमात्मक शिष्ट मंडल (प्रिपरेटरी मिशन) प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी के आसन्न दौरे की तैयारी के लिए आया था। मुझे याद आता है कि निशो इवाई की मेजबानी में उनके लिए एक छोटा सा रात्रि भोज (डिनर) आयोजित किया गया था जो प्रसिद्ध शोगा-शोशा से भी जुड़े थे - यानी कई प्रकार की वस्तुओं व सेवाओं का अंतरराष्ट्रीय व्यापार करने वाली एक बड़ी जापानी कंपनी। इस डिनर में एक वृद्ध सज्जन, जो अब रिटायर हो चुके हैं, ने एलके से हाथ मिलाया और एक कार्ड दिया जिस पर उनका नाम व पदनाम संयुक्त सचिव, औद्योगिक विकास मंत्रालय के रूप में दर्ज था। एलके से वे दशकों पहले मिले थे और तब से एलके एक लंबी यात्रा कर चुके थे – उद्योग मंत्रालय के सचिव, आर्थिक कार्य विभाग के सचिव, प्रधान मंत्री के सचिव और आरबीआई के गवर्नर। एलके चकित हुए कि उस व्यक्ति ने क्यों व कैसे उनके संतुक्त सचिव के दौर का पुराना विजिटिंग कार्ड संभाल रखा था। वृद्ध सज्जन ने कहा कि पहली मुलाकात में ही वे एलके की मेधा से प्रभावित हुए थे और तब से दशकों तक इस कार्ड को संभाल रखा था इस उम्मीद में, कि उनसे फिर मुलाकात होगी और अवश्य ही वे किसी ऊँचे पद पर पहुँचेंगे। एलके मुस्कुरा दिए और वृद्ध सज्जन की तो साध ही पूरी हो गई थी।

एलके एक सच्चे उदार चिंतन के प्रतिनिधि थे। अनेकानेक दायित्वों में उन्होंने उन उपायों को खोजने के अविराम प्रयास किए जो अर्थव्यवस्था को मुक्त करें, स्पर्धा द्वारा उत्पादकता बढ़ाएं, विकास में योगदान दें और गरीबी व कल्याण के मुद्दों पर कार्य करने लायक पर्याप्त राजकोषीय अवकाश दें। वाकई यह दृष्टिकोण उनमें कूट-कूटकर भरा था और उनसे जुड़े किस्से बताते हैं कि भारतीय रिज़र्व बेंक के गवर्नर का दायित्व संभालने के लिए जब इंदिरा गांधी के सचिव का पद छोड़कर वे गए, साउथ ब्लॉक से एक उदार दृष्टिकोण जाता रहा। उसके बाद के वर्षों में एक वामपंथी रुख़ का दबदबा रहा जो सरकारी खर्च को बढ़ाने व नियमों की कड़ाई में बहुत ज्यादा विश्वास करता था।

मेरी उनसे अंतिम भेंट तब हुई ती जब वे 1986 में राज्य सभा का नामांकन भरने के लिए पटना आए थे। तब तक में पहले ही बिहार लौट चुका था और उद्योग विभाग का प्रधान सचिव था। मेरे पैतृक घर के लॉन में बाहर बैठे उन्होंने स्मृति के कोश पलटते हुए बताया कि कैसे वे बीते दिनों को, हमारे परिवार के साथ अपने सुदीर्घ संबंधों और मेरे माता-पिता की कमी को महसूस करते हैं जिनके साथ उनके परिवार के बड़े प्रगाढ़ संबंध थे। अफ़सोस की यह मेरी अंतिम मुलाकात थी क्योंकि बिहार से राज्य सभा के सदस्य रहने के दौरान ही उनका निधन हो गया। कोई आश्चर्य नहीं कि वाशिंगटन पोस्ट ने अपनी श्रद्धांजलि में कहा कि *'झा जी भारत सरकार के इस्पाती ढाँचे का मूर्त रूप थे'।* कुछ समय पहले इसमें यह भी कहा गया था कि *'वाशिंगटन और लंदन के सत्ता दलालों के साथ झा जी उतने ही सहज थे जितने नई दिल्ली वालों के साथ। अपनी औपचारिक सरकारी सेवा के समाप्त होने के बाद भी बड़ी राजनैतिक हस्तियां उनकी राय लेती थीं और किसी बड़े मुद्दे पर जब भी उनको बोलना जरूरी लगा, उनकी बात सुनी जाती थी'।*

---

* 22 नवंबर 2019 को भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई में दिया गया 17वां एल. के. झा स्मारक व्याख्यान। दृष्टिकोण और विचार लेखक के ही हैं।

राजकोषीय परिसंघवाद के इस विषय पर मैंने आज के व्यापक थीम का चुनाव किया है, इसलिए कि कुछ अंतिम सार्वजनिक पद जिन पर उन्होंने कार्य किए, उनमें से एक 1980 के दशक में आर्थिक प्रशासनिक सुधार आयोग की अध्यक्षता थी जिसमें हमारे अभिशासनिक नियमावली की पुनर्संरचना पर कई विचार थे, उस युग में जिसे वो वैश्वीकरण कहते थे।

आज के व्याख्यान में मैं केंद्र-राज्य संबंधों के बदलते परिदृश्य और भारत के जीवंत संघीय राज्य व्यवस्था पर चर्चा करना चाहता हूँ। परिसंघवाद अलग-अलग लोगों के लिए अलग-अलग अर्थ रखता है। संघीय रूमानियों का मानना है कि भारत का भविष्य वृहत्तर स्वयात्तता व राज्यों को अधिकार में है तथा राज्य व्यवस्था के विकास क्रम ने राज्यों को हमारी विकास प्रक्रिया में एक अधिक सार्थक योगदान देने से वंचित कर दिया है। वे ऐसी ही बात सरकार के तीसरे स्तर अर्थात् पंचायत व शहरी स्थानीय निकायों के बारे में कह सकते हैं। वैसे, दूसरे भी हैं जो विषय को एक अधिक वस्तुनिष्ठ भाव से देखते हुए राजकोषीय परिसंघवाद के ढाँचे का व्यापक परीक्षण करते हैं और मूल संरचना की कसौटी पर कसकर इसे देखते हैं। पर जैसा कि चार्ल्स कैनेडी ने कहा कि, 'विज़न में सफ़ल होने से पहले हमें शब्दावली को जीतना है'। राजकोषीय परिसंघवाद के मामले में भी यह सच है।

वास्तव में, जर्मनी में जन्मे अमेरिकी अर्थशास्त्री रिचर्ड मुसग्रेव ने 1959 में सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग किया। बहुत बाद में राजकोषीय परिसंघवाद पर 1999 में लिख रहे वैलेस ई. ओक्स ने कहा कि 'यह इस बात के ज्ञान से संबंधित है कि किन कार्यों व उपकरणों को केंद्रीकृत करना श्रेष्ठ है और सरकार के विकेंद्रीकृत स्तरों के क्षेत्र में किनको रखना श्रेयस्कर है।' यह अवधारणा सरकार के सभी स्वरूपों पर लागू होती है : एकात्मक, परिसंघात्मक और महासंघात्मक.

विकास

भारत में राजकोषीय परिसंघवाद के विकास पर कुछ चर्चा उपयोगी रहेगी। इसकी बहुत सारी विशेषताएं ईस्ट इंडिया कंपनी और ब्रिटिश राज के इतिहास के साथ गुंफ़ित हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी को रानी एलीजाबेथ की ओर से सन् 1600 में निगमन का एक चार्टर दिया गया था जिससे कंपनी को भारत से व्यापार का अनन्य अधिकार मिला था।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के विभिन्न स्थानों पर कई फैक्टरियों व व्यापार केंद्रों की स्थापना की। बॉम्बे, मद्रास और कलकत्ता प्रमुख उपनिवेश बने और प्रेसिडेंसी घोषित किए गए।

1773 के अधिनियम के तहत, कलकत्ता प्रेसिडेंसी को अन्य दो प्रेसिडेंसियों मद्रास व बॉम्बे पर पूर्ण अधिकार दिए गए जो पहली बार एक सरकार बनने जैसा था। तथापि 1833 के चार्टर अधिनियम में जाकर एक केंद्रीय राजकोषीय प्राधिकार बना जिसकी घटक प्रेसिडेंसियां थीं। इसके द्वारा भारत की वित्तीय व विधायी शक्तियां पूरी तरह बंगाल के गवर्नर जेनरल को दी गईं और उनको भारत का गवर्नर जेनरल कहा गया और इस प्रकार पूरा प्रशासन केंद्रीकृत किया गया।

1858 में राज (क्राउन) के सीधे नियंत्रण के साथ ही 31 मार्च को समाप्त होने वाले वर्तमान वित्तीय वर्ष और इंग्लिश बजट सिस्टम अपनाए गए।

भारतीय संविधान में संघ, राज्य और समवर्ती सूचियों का उद्गम नई प्रणाली के अंतर्गत प्रस्तुत 1860-61 के पहले बजट में है।

प्रशासनिक विषयों को दो वर्गों - केंद्रीय और प्रादेशिक - में बाँटने वाली द्वैध शासन व्यवस्था – गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट 1919 में अधिनियमित मॉन्टेग – केम्सफ़र्ड सुधारों का परिणाम थी। अधिनियम के अंतर्गत प्रदेशों (प्रॉविंस) को प्रतिनिधित्व (डेलीगेशन) द्वारा अधिकार प्राप्त थे और किसी विषय पर पूरे देश के लिए विधान बनाने का अधिकार केंद्रीय विधायी के पास था। राजस्व के स्रोत भी केंद्र व प्रॉविंसों में बँटे हुए थे।

1927 में, 1919 के अधिनियम के कार्य की समीक्षा के लिए साइमन कमीशन नियुक्त हुआ। कमीशन ने भारतीय रियासतों (इंडियन प्रिंसली स्टेट्स) और प्रदेशों के गठन का पक्ष लिया जो ब्रिटिश सरकार के प्रशासकीय मंडल थे।

गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट, 1935 ने एक संघीय व्यवस्था स्थापित की जिसमें भारतीय राज्य व प्रदेश दो अलग-अलग इकाइयां थीं। इस अधिनियम (ऐक्ट) के अंतर्गत विधायी शक्तियां तीन सूचियों में बँटी हुई थीं – संघीय सूची (फेडरल लिस्ट), प्रादेशिक सूची (प्राविंसियल लिस्ट) और समवर्ती सूची। अधिनियम ने प्रादेशिक सरकार एवं संघीय सरकार के राजस्व व वित्त को अलग-अलग रखा। अधिनियम में संघ सरकार द्वारा उगाही (लेवी) एकत्र करने और रखने का प्रावधान था तथा वित्तीय संसाधनों के वितरण और प्रॉविंसों को सहायता अनुदान का विस्तृत ब्यौरा बताया गया था।

अधिनियम के अनुसार, महामहिम द्वारा परिषद (काउंसिल) में निर्धारित राशियां संघ के राजस्व पर लगाई जानी थीं। गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट, 1935 ने भारत में राजकोषीय परिसंघवाद का मूलभूत ढाँचा दिया जो आज भी जीवित है।

संविधान सभा 1946 में गठित हुई जिसने सरकार का एकात्मक स्वरूप अपनाया। वैसे, परिसंघीय स्वरूप कालक्रम में देश में विकसित हुआ। सरकार के परिसंघीय स्वरूप व परिसंघीय वित्त के अंतिम आकार को गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट (भारत सरकार अधिनियम), 1935 में निगमित किया गया। इसमें संसदीय प्रणाली की भी कुछ विशेषताएं थीं। तथापि प्रस्तावित परिसंघ सरकार व रियासतों (प्रिंसली स्टेट्स) के सापेक्ष ब्रिटिश इंडिया के प्रदेशों (प्रॉविंसेज़) के बीच संबंधों का स्वरूप स्वंतंत्रता के बाद ही तय किया गया, लेकिन संविधान अपनाए जाने के पहले।

स्वतंत्रता के बाद

स्वतंत्रता के समय, भारत के पास नौ प्रॉविंस और 500 से अधिक रियासत/(रजवाड़े/प्रिंसली स्टेट्स) थे। क्षेत्रफल का 40 प्रतिशत और आबादी का 30 प्रतिशत इन रियासतों से था तथा इनके आकार, चरित्र, प्रणालियों और ब्रिटिश इंडिया के साथ उनके संबंधों के स्वरूपों में बड़ी विविधता थी। स्वतंत्रता के बाद, भारत से उनका एकीकरण हुआ और 26 जनवरी 1950 को राज्यों का संघ अस्तित्व में आया।

इस प्रकार भारत में राजकोषीय परिसंघवाद के विकास का उदगम सुदीर्घ रहा है। मूलत: यह 1919 और 1935 के गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया ऐक्ट जितना पुराना है। 1919 के अधिनियम में जहाँ केंद्र व प्रदेशों के बीच राजस्व मदों के बँटवारे का प्रावधान है, 1935 वाले अधिनियम ने केंद्र के राजस्व की शेयरिंग और प्रदेशों (प्रॉविंस) के लिए सहायता अनुदान के प्रावधान की अनुमति दी।

हमारे संविधान की धारा 1 इंडिया अर्थात् भारत को *'राज्यों का संघ (यूनियन)' न कि 'राज्यों का परिसंघ (फेडरेशन)'* कहती है।

संविधान सभा में देश के नाम के बारे में सहमति नहीं थी। कुछ सदस्यों ने पारंपरिक नाम (भारत) सुझाया जबकि दूसरों ने आधुनिक नाम (इंडिया) की वकालत की। अत: संविधान सभा को दोनों का मिश्रण अपनाना पड़ा ('इंडिया' दैट इज़ 'भारत')।

दूसरे, देश को 'संघ'('यूनियन') कहा जाता है, जबकि इसकी सरचना परिसंघीय है। 4 नवंबर 1948 को संविधान सभा में संविधान का प्रारूप रखते हुए बीआर अंबेडकर ने इस प्रश्न का उत्तर दिया कि भारत क्यों एक 'संघ' है और 'राज्यों का एक महासंघ' नहीं :

'प्रारूप समिति यह स्पष्ट करना चाहती थी कि यद्यपि भारत को एक परिसंघ होना था, पर परिसंघ राज्यों द्वारा एक परिसंघ (फेडरेशन) में मिलने के किसी समझौते का परिणाम नहीं था और चूँकि परिसंघ किसी समझौते का परिणाम नहीं है, किसी राज्य को इससे अलग निकलने का अधिकार नहीं है। परिसंघ एक संघ है क्योंकि इसे तोड़ा नहीं जा सकता।'

राजनीति शास्त्री अल्फ्रेड स्टेपान ने भारत को 'साथ आने वाला' के विपरीत 'साथ बंधने वाला' परिसंघ कहा है। अटूट राज्यों से *बने* अटूट संघ के रूप में वर्णित यूनाइटेड स्टेट्स की सरकार के परिसंघीय स्वरूप के विपरीत भारत टूट सकने वाले राज्यों का अटूट संघ है।

भारतीय परिसंघ की इकाइयां 1947 से कई बार रूपांतरित हुई हैं। क्योंकि संविधान की धारा 3 संसद को नए राज्यों के गठन का अधिकार देती है। ऐसे प्रावधान को जहाँ संघ को बहुत ज्यादा अधिकार देने वाले के रूप में देखा जा सकता है, इतना तो मानना पड़ेगा कि भारत को साथ बाँधने वाला यह केंद्रीय तत्व है क्योंकि यह परिसंघ को विकसित होने और उप-राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रतिसाद की अनुमति देता है।

प्रारंभ में 1950 में, संविधान ने जहाँ भारतीय संघ के राज्यों को चार वर्गों - ए, बी सी, डी में में रखा। राज्यों के पुनर्गठन अधिनियम/स्टेट रिऑर्गेनाइजेशन ऐक्ट (1956) द्वारा भाग -ए और भाग –बी के राज्यों में भेद समाप्त कर दिया गया जबकि भाग - सी और भाग –डी के राज्यों को हटा दिया गया। *जम्मू और कश्मीर को संघ/केंद्र शासित प्रदेश बना दिए जाने के बाद हमारे पास 28 राज्य और 9 केंद्र शासित प्रदेश हैं; संघ-शासित प्रदेशों की सूची में सबसे नया नाम 31 अक्टूबर 2019 को जम्मू व कश्मीर और लद्दाख का जुड़ा।*

व्यापक रूप में राजकोषीय परिसंघवाद के विकास की प्रक्रिया व पद्धतियों में उल्लेखनीय स्थिरता रही है। केंद्र व परिसंघ सरकारों की वार्षिक बजटीय प्रक्रियाएं स्वतंत्र कार्य हैं और इनको संसद या राज्य विधानमंडल से होकर गुजरना है। संविधान की धारा 280 के अंतर्गत 1951 में पहली बार गठित वित्त आयोग की परंपरा अविच्छिन्न रही है। संविधान की धारा 280 में निहित कार्यों को यह संपन्न करता है।

धारा 280 कहती है:

(1) राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारंभ से दो वर्ष के भीतर और तत्पश्चात प्रत्येक पांचवे वर्ष की समाप्ति पर या ऐसे पूर्वतर समय पर जिसे राष्ट्रपति आवश्यक समझता है, आदेश द्वारा, वित्त आयोग का गठन करेगा जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाने वाले एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा ।

(2) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह निम्नलिखित के बारे में राष्ट्रपति को परामर्श दे

(ए) *संघ और राज्य के बीच करों के शुद्ध आगम, जो इस अध्याय के अधीन उनमें विभाजित किए जाने हैं या किए जाएं, वितरण के बारे में और राज्यों के बीच ऐसे आगमों के तत्संबंधी भाग के आबंटन के बारे में;*

(बी) *भारत की संचित निधि से राज्य के राजस्व में सहायता अनुदान को शासित करने वाले सिद्धांतों के बारे में;*

(सी) सुदृढ़ वित्त के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्दिष्ट किए गए किसी अन्य विषय के बारे में।

(3) आयोग अपनी प्रक्रिया अवधारित करेगा और अपने कृत्यों के पालन में उसे ऐसी शक्तियां होंगी जो संसद, विधि द्वारा, उसे प्रदान करे।

स्वतंत्रता के उपरांत अधिकांशत: योजना आयोग एकाधिक ढंग से केंद्रकारी निर्भरता लेकर आया। राज्यों के संघ से संसाधनों के अंतरण के लिए योजना आयोग एक समानांतर संस्थान बन गया। वित्त आयोग का फोकस जहाँ राजस्व खाते पर बना रहा, योजना आयोग का मुख्य सरोकार पूँजी खाता था। एक के एक बाद वित्त आयोगों ने इसे संसाधनों के न्यागमन की संविधान की भावना से असंगत माना। कुछ अन्य घटनाक्रम भी हुए जैसे 1992 में संविधान में 73वां और 74वां संशोधन जिससे पंचायत राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों को विशेष दर्जा मिला और ग्यारहवीं व बारहवीं अनुसूचियों के तहत उन्हें विशिष्ट कार्य सौंपे गए।

केंद्र व राज्यों के बीच समन्वय इकाई के रूप में दो प्रमुख संस्थाएं बनी रहीं, योजना आयोग का काम देखने, उनकी पंच वर्षीय योजनाओं और उनके मध्यावधि मूल्यांकन के लिए 1952 में गठित राष्ट्रीय विकास परिषद और सरकारिया आयोग रिपोर्ट के परामर्शों के आधार पर 1990 में संवैधानिक संशोधन द्वारा

अंतर राज्य परिषद का गठन। स्वयं को जो मैं प्रश्न पूछना चाहता हूँ, वह यह है कि क्या केंद्र-राज्य संबंध और उनके समीकरण बदलते समय की माँग के अनुसार चले हैं? आर्थिक नीतियों और सरकारी नियमों को लें तो भारत में हुए बदलाव एकदम से यकायक नजर नहीं आते।

भविष्य में मुझे कुछ प्रमुख चुनौतियां दिखाई पड़ती हैं

प्रथम और सर्वोपरि VIIवीं अनुसूची का भविष्य। इस पर मुझे थोड़ा रुकने की जरूरत है। संविधान की VIIवीं अनुसूची अभिशासन के कार्यों को मोटे तौर पर तीन इकाइयों में बाँटती है। यह अनुसूची संघ और राज्यों के बीच विधायी व वित्तीय अधिकारों को बाँटती है। सूची I संघ के विषयों से संबंधित है जबकि सूची II राज्यों के विषय से और समवर्ती सूची के नाम से जानी जाने वाली सूची III संघ व राज्यों दोनों से संबंधित है जिसमें विरोधी विधान के मामले में संघ द्वारा पारित कानून लागू होगा।

समय के साथ, समवर्ती सूची का दायरा बढ़ा है। इसका कारण संविधान का 42वां संशोधन (1975) मात्र ही नहीं जिसने जंगल व शिक्षा के विषयों को राज्य सूची से निकालकर समवर्ती सूची में रखा।

यद्यपि यह पूर्णत: संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से किया गया एक औपचारिक कार्य था अन्य तरीके भी रहे हैं जिसमें मूल रूपरेखा को काटा-छाँटा और प्राय: रूपांतरित करने का प्रयास किया गया। उदाहरण के लिए पात्रता आधारित अलग विधानों का मामला लिया जाए। कुछ समय पहले हमने पात्रता आधारित अलग विधान के युग में प्रवेश किया। महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005, नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 इसके आदर्श उदाहरण हैं। ये स्वतंत्र विधान संविधान की VIIवीं अनुसूची के साथ कैसे फिट होते हैं? क्या वे निर्धारित सीमाएं लाँघते हैं? और ऐसा कैसे कि किसी भी राज्य ने किसी भी स्टेज पर इन उल्लंघनों का विरोध नहीं किया? यह वह क्षेत्र था जहाँ राजकोषीय रूमानियों को दखल देना चाहिए था क्योंकि रोजगार, शिक्षा और खाद्य को तो पूर्णत: राज्यों के दायरों में होना था। राज्यों की स्वायत्तता का मुद्दा कभी भी गंभीर विश्लेषणात्मक आलोचना मे आया हो, ऐसा मुझे तो याद नहीं।

दूसरे, VIIवीं अनुसूची के शब्द व भाव के साथ संविधान की धारा 282 की विसंगति का मुद्दा। धारा 282 का कहना है, 'संघ या राज्य किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए कोई अनुदान दे सकता है, बावजूद इसके कि उद्देश्य वह नहीं जिसके बारे में संसद या विधान मंडल, जैसा मामला हो, कानून बना सकता है।'

मूलत: संविधान में इसे एक सर्वव्यापी के बजाय असाधारण प्रावधान के रूप में देखा गया था जिसका प्रयोग सावधानी से किया जाए और यदि 2सरे वित्त आयोग के अध्यक्ष श्री के संथानम को उद्धृत करूँ, तो धारा 282 पर उन्होंने कहा था – *'मूलत: इसका उददेश्य संघ व राज्यों के बीच पुनर्व्यवस्थापन के एक बड़े प्रावधान के रूप में नहीं था, यदि वैसा विचार होता, तो हिस्सों, कार्यभार और अनुदानों के संबंधों का ऐसा जटिल समूह विकसित करने का कोई मतलब नहीं था। राज्यों को सहायता करने हेतु केंद्र को सक्षम बनाने की दो धाराएं रखने का कोई मतलब नहीं – एक वित्त आयोग के माध्यम से और दूसरा अधिक कार्यपालक विवेक द्वारा। दूसरे में संसदीय विधान की भी आवश्यकता नहीं। यह जरूर है कि इसे बजट में शामिल करना होगा। लेकिन, बजट में एक मद होने से अधिक किसी मंजूरी की जरूरत नहीं। अत: मेरे विचार से यह धारा एक अवशिष्ट, एक रिज़र्व धारा थी ताकि केंद्र अप्रत्याशित आकस्मिकताओं से निपट सके। इस धारा का उपयोग ब्रिटिश सरकार और ट्रांसफ़र ऑफ़ पावर के बाद, पहली पंचवर्षीय के प्रथम वर्ष के पहले किया गया। इस धारा के तहत, केवल कुछ अधिक-खाद्य-उगाओ और पुनर्वास अनुदान दिए गए।'*

संविधान विशेषज्ञ एन ए पालकीवाला ने 9वें वित्त आयोग को अपने ये विचार दिए - *'धारा 282 संघ को यह अधिकार देने के लिए नहीं बनी कि वे ग्रांट दिए जा सकें जो समुचित रूप से धारा 275 के अंतर्गत आते हैं। धारा 282 केवल एक अवशिष्ट अधिकार को मूर्त रूप देती है जिससे संघ या राज्य किसी भी उद्देश्य के लिए ग्रांट दे सकें, बिना इस सवाल के कि ग्रांट देने वाले को उस उद्देश्य पर विधायी अधिकार है या नहीं।'*

केंद्रीय तौर पर स्पॉन्सर की गई सभी स्कीमों की वैधता जिसमें से अधिकांश राज्यों के दायरे में हैं, आर्टिकल (धारा) 282 के उपयोग या इसका सहारा लेकर दुरुपयोग से जन्मती है। वस्तुत: योजना आयोग का उद्देश्य ही कई मायनों में स्कीमों के जंगल न कहें तो भी झुंड में धारा 282 के अततिशय प्रयोग से पैदा हुआ। यहाँ पुन:, इन योजनाओं (स्कीमों) को युक्तिसंगत करने की बारंबार कोशिश, जो आख़िरी बार मध्य प्रदेश के पूर्व मुख्य मंत्री शिवराज सिंह चौहान की अध्यक्षता वाली समिति के अंतर्गत हुई थी, के बावजूद इनकी संख्या व विविधता बड़ी जबरदस्त रही। 15वें वित्त आयोग के आंतरिक कार्य के आधार पर, 29 छत्र मूल (कोर) व मूल की मूल (कोर ऑफ़ द कोर) योजनाओं के अंतर्गत लगभग 211 योजनाएं/उप-योजनाएं हैं। इनमें से कई तथाकथित छत्र योजनाओं के तहत मुखौटा लगाए बैठी हैं। सर्वाधिक चौंकाने वाली बात यह कि केंद्रीय रूप से स्पॉन्सर्ड इन योजनाओं पर 2019-20 बीई में केंद्र सरकार का परिव्यय लगभग 3.32 लाख़ करोड़ है। यह देखते हुए कि राज्य प्राय: यह विरोध करते हें कि इन योजनाओं का प्रारूप ठीक नहीं व उनके विशिष्ट आवश्यकताओं के उपयुक्त नहीं तथा इनमें उनका वित्तीय परिव्यय काफ़ी बड़ा है, किसी राज्य ने उनको छोड़ने का वास्तव में कोई निर्णय नहीं लिया है। सूर्यास्त की ओर बढ़ रही केंद्र प्रायोजित योजनाओं से दूर, आयुष्मान भारत, जल जीवन मिशन जैसी योजनाओं से इनकी पहुँच व विविधता को बढ़ाना अभिप्रेत है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आलोक में आगे की राह क्या है

सर्वप्रथम, हमें यह मानना होगा कि विकास क्रम में भारतीय राज्यतंत्र का स्वरूप बहुत बदल गया है। जन संविधान की रूपरेखा खींची गई, तकनीक व देशांतरण द्वारा राज्यों में बनी सहनिर्भरता ने उतनी गति नहीं पकड़ी थी। लेकिन वैश्वीकरण-पूर्व युग में राज्यों की स्वायत्तता उस युग से बहुत अलग थी जहाँ देशांतरण व तकनीक दोनों ने राज्यों की सीमाएं उल्लेखनीय रूप से खत्म कर दी हैं। वैश्विक मूल्य वर्धित श्रृंखला की जब हम बात करते हैं तो हम भूल जाते हैं कि भारतीय मूल्य वर्धित श्रृंखला भी है। अंतिम उपभोक्ता तक पहुँचने से पहले, एक राज्य में शुरू किए गए उत्पाद, प्रक्रियाएं और सेवाओं में कई राज्य शामिल हो सकते हैं। दरअसल, स्पर्धात्मक परिसंघवाद का दर्शन, राज्यों की रैंकिंग पर नीति आयोग की पहल इस तरीके से पनपी है।

राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और स्वच्छ भारत, नई शिक्षा नीति, आयुष्मान भारत, जल जीवन मिशन द्वारा स्वच्छ जल जैसे उल्लेखनीय कदम केंद्र व राज्यों के बीच दायित्वों के बदलते स्वरूप का अभिन्न अंग है। राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के मुद्दे राज्यों की सीमाओं के परे हैं क्योंकि वे समाज के हर वर्ग को लाभ पहुँचाने वाले विकास गुणांक के मूलभूत सिद्धांतों पर स्वास्थ्य, आवास व रोजगार जैसी अपरिहार्य राष्ट्रीय प्राथमिकताओं कार्य करते हैं। ये बात प्रशासकीय हदों व कमियों को लांघ जाती हैं।

इसे संविधान के भाग XII में हुए बदलावों के साथ देखें जिसकी परिणती भारत को एक साझा बाजार व इकाई बनाने वाली जीएसटी को अपनाए जाने के रूप में हुई। एक प्रकार से जीएसटी परिषद जो एक संवैधानिक निकाय भी है जो जीएसटी दरों पर अपने फिटमेंट समितियों के जरिये निर्णय लेती है क्योंकि संसद व राज्य विधान मंडल दोनों ने अपनी वित्तीय शक्तियां इस अधिकार प्राप्त समिति को सौंपी हैं। जिन राज्यों में हम गए हैं, वित्त आयोग का हिस्सा होने के कारण, राज्यों ने प्राय: शिकायत की है कि जीएसटी के कारण उनकी राजकोषीय स्वयात्तता में कटौती हुई है और राजस्व में कुछ करने का अवकाश काफ़ी हद घट गया है। मामला सर्व साधारण की भलाई के लिए एकत्रित संप्रभुता का है। तथापि जीएसटी परिषद अभी भी शैशवावस्था में है तथा इसे अपनी रुपरेखा व निर्णय के मामले में

अधिक आधारभूत स्तर पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि यह अपने मूल उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम हो।

तो राजकोषीय परिसंघवाद को सुदृढ़ करने के मेरे पाँच सुझाव इस प्रकार हैं

प्रथम व सर्वोपरि, अभिशासन का आधारभूत स्वरूप बदल गया है। उदाहरण के लिए, क्या किसी राज्य के दौरे पर किसी प्रधानमंत्री का यह समझाना उचित है कि जल आपूर्ति, बेहतर बिजली आपूर्ति या उन्नत कृषि के लिए वे कोई सहयोग नहीं दे सकते क्योंकि ये विषय VIIवीं अनुसूची के हैं जो राज्य के दायरे में आते हैं? यह व्यावहारिक नहीं है क्योंकि यह आवश्यक है कि संविधान लोगों की इन बदलती उम्मीदों के अनुसार ढले और कार्य करे

चुनावी आधार पर चलने वाले राजनैतिक नेतृत्व में लोगों का राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर भरोसा होता है। जैसा कि मैंने पहले कहा, राज्य-व्यवस्था, तकनीक, बढ़ती आकांक्षाओं वाला समाज, जनसांख्यिकीय स्वरूप और तकनीक की ताकत ने संविधान की रूपरेखा को नाटकीय रूप से बदला है।

व्यवहार व सिद्धांत दोनों में, बहुत से विश्वास व सिद्धांत जिसके देखते हुए हमारे पूर्वजों ने जिस संविधान को वर्तमान आकार दिया है, उस पर कुछ मौलिक पुनर्विचार की आवश्यकता हो सकती है। मेरे कहने के बहुत पहले औपचारिक रूप से केंद्र-राज्य संबंध अन्वेषण समिति के रूप में जानी जाने वाली राजामन्नार समिति द्वारा 1971 में प्रस्तुत एक रिपोर्ट कहती है ' यह वांछनीय है कि बड़े वकीलों व न्यायविदों और प्रशासकीय अनुभव वाले वरिष्ठ राजनेताओं को लेकर एक उच्चाधिकार प्राप्त आयोग बने जो संविधान की VIIवीं अनुसूची में दर्ज सूची I व सूची III की प्रविष्टियों की परीक्षा करे और इनके पुर्वितरण का सुझाव दे।'

निचोड़ यह कि समकालीन संदर्भ में VIIवीं अनुसूची पर पुनर्विचार हो। जब तक हम अनुसूची की रूपरेखा फिर से नहीं खींचते, संविधान की VIIवीं अनुसूची व धारा 282 और इन विषयों के स्वतंत्र विधान प्राथमिक रूप से अव्यवस्थित व अस्पष्ट बने रहेंगे।

दूसरे, जीएसटी परिषद और वित्त आयोग के कार्य में तालमेल पर गंभीर पुनर्विचार की जरूरत है। वित्त आयोग संघ व राज्यों के बीच और उसके पश्चात और आगे तीसरे स्तर पर राज्यों में राजस्व वितरण का सुझाव देते हैं। वे व्यय और राजस्व के अनुमान देखते हैं, लेकिन जीएसटी दरों में छूट, बदलाव और अप्रत्यक्ष करों का कार्यान्वयन पूरी तरह जीएसटी काउंसिल के अधीन हैं। इसके चलते राजस्व परिणामों को मॉनिटर करने, जाँचने और उस हेतु सही कदम उठाने के तरीकों से जुड़े प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। चूँकि वित्त आयोग और जीएसटी परिषद दोनों संवैधानिक निकाय हैं, दोनों के बीच समन्वय एक अपरिहार्यता है। पहले पाँच वर्षों के लिए माल और सेवा कर (राज्यों को क्षतिपूर्ति अधिनियम) 2017 द्वारा 14 प्रतिशत गारंटीड क्षतिपूर्ति राज्यों को दी जाती है।

यह व्यवस्था 2022 में समाप्त हो जाएगी। लेकिन कई राज्य उसके बाद इसका विस्तार चाहते हैं। जहाँ तक वित्त आयोग का संबंध है, इसके भावी मार्ग का उन सुझावों पर असर है जो यह राज्यों के संभावित राजस्वों, टिकाऊ विकास दरों एवं धारा 275 के अंतर्गत राजस्व घाटे पर दे सकता है।

तीसरा, पहले वाले से इसकी कड़ी, केंद्र प्रयोजित योजनाओं और केंद्रीय परिव्यय के औचित्यीकरण के लिए हमें उससे कहीं अधिक विश्वसनीय नीति चाहिए जितनी अब तक संभव हुई है। अतीत में कई समितियों ने ऐसा करने की कोशिश की है लेकिन परिणाम हाथ नहीं आए हैं। यह और भी अधिक प्रासंगिक है क्योंकि नीति आयोग की भूमिका, जो प्राथमिक तौर पर वित्तीय निकाय नहीं बल्कि एक थिंक टैंक संस्था है, की भूमिका वित्तीय क्षेत्र में स्पष्ट है। अभी ऐसी कोई केंद्रीय इकाई नहीं जो समग्र तौर पर केंद्र प्रायोजित योजनाओं को देखे तथा यह कि केंद्रीय क्षेत्र परिव्यय के साथ कितने व किस रूप में समामेलित किए जा सकते हैं। हमें विषय के विशेषज्ञों का एक

अधिकार प्राप्र समूह बनाने की दरकार है जो इन केंद्र प्रायोजित योजनाओं के अधिक व्यापक व गहरे औचित्यकरण की रूपरेखा पर वित्त मंत्री व प्रधान मंत्री को अपनी रिपोर्ट सौंपे।

चौथे, योजना आयोग के हटने के बाद, बहुत से अर्थशास्त्री व नीति निर्माताओं ने संस्थागत शून्य की बात की है। एनडीसी जहाँ एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है, राज्यों ने केंद्र के साथ नीतिगत संवाद की एक कड़ी का काम करने वाले एक विश्वसनीय संस्था की वकालत की है। विश्व के कई देशों में राज्यों ने अपने हितों का संयुक्त रूप से प्रतिनिधित्व की पहल की है जैसे ऑस्ट्रेलिया में 2005 में कैनबरा में राज्यों द्वारा बनाया गया ऑस्ट्रेलियन फेडरेशन का परिषद। हमारे पास एक संस्थागत इकाई है और अंतर-राज्य परिषद को जगाने और उसमें जीवन भरने पर गंभीर विचार की आवश्यकता है।

विसंगति का पाँचवा क्षेत्र राजकोष से संबंधित है। इस वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों में से एक संघ व राज्यों के वर्तमान ऋण-स्तर की समीक्षा करना और अच्छे राजकोषीय प्रबंध के लिए एक राजकोषीय समेकन मार्ग सुझाना है।

संशोधित एफआरबीएम ऐक्ट के अनुसार, केंद्र सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त कदम उठाएगी कि:

ए. सामान्य सरकारी ऋण 60 प्रतिशत से अधिक न हो;

बी. वित्तीय वर्ष 2024-25 के अंत तक केंद्र सरकार ऋण जीडीपी के 40 प्रतिशत से अधिक न हो।

सी. 2018-19 संशोधित आकलन (आरई) के लिए केंद्र सरकार ऋण जीडीपी के 48.4 प्रतिशत पर आँका गया है। उम्मीद है कि 2019-20 बजट आकलन (बीई) में केंद्र सरकार देयताएं घटकर जीडीपी के 48 प्रतिशत पर आ जाएंगी।

डी. राज्य सरकारों की बकाया देयताएं 2017 में सकल राज्य देशी उत्पाद (जीएसडीपी) के 25.1 प्रतिशत पर हैं जिसमें पंजाब 42.8 प्रतिशत और छत्तीसगढ़ 17 प्रतिशत का रेंज दिखाता है (राज्य बजटों पर आरबीआई के अद्यतन अध्ययन के अनुसार)।

दूसरा, केंद्र व राज्यों दोनों के राजकोषीय व ऋण मार्ग का तालमेल एक दुष्कर किंतु अपरिहार्य कार्य है। वर्तमान अवरोधों व परंपरा के मुद्दों को समझने वाले राज्यों के एक पृथक ऋण मार्ग को बड़ी समझदारी व संवेदनशीलता से संभालना होगा।

इन घटनाक्रमों ने आयोग के समक्ष आयोग की अधिनिर्णय अवधि 2020 से 2025 के लिए एक कार्ययोजना बनाने का एक महत्त्वपूर्ण व चुनौतीपूर्ण कार्य प्रस्तुत किया है।

जन वित्त प्रबंधन (पीएफएम) प्रणाली में सुधार एक निरंतर प्रक्रिया है। पिछले वित्त आयोगों ने बजटीय व लेखांकन प्रक्रियाओं, वित्तीय रिपोर्टिंग आदि पर बल देते हुए संघ व राज्यों दोनों की पीएफएम प्रणाली के विभिन्न पक्षों पर सुझाव दिए हैं।

उपसंहार

मेरा पूरा विश्वास है कि मेरे कुछ सुझावों पर यदि नए प्रयास किए जाएं तो इससे राजकोषीय संघवाद को नई जीवंतता मिल सकती है। सिद्धांत को लेकर कोई संदेह नहीं, अपितु व्यवहार उत्तरोत्तर धुंधला होता गया है और व्यवहार पर गंभीर ध्यान देने की जरूरत है। आज का भारत, इसके अभिशासन का मिश्रण, इसकी आर्थिक खोज उस भारत से काफी अलग है जिसने 1950 में अपना संविधान गढ़ा।

क्या हम एक ऐसे वास्तविक राजकोषीय साझेदारी की रूपरेखा व संरचना पर पुनर्विचार कर सकते हैं जो महज अधिक संसाधन जुटाने की एक दौड़ नहीं होगी, बल्कि एक जीवंत भारतीय मूल्य वर्धित श्रृंखला की ओर एक रचनात्मक प्रयास होगा जो हमारी वृद्धि-दर को उछालकर दुहरे अंक वाली वृद्धि की तलाश के करीब ला खड़ा करेगी। आर्थिक मंदी के दौर को किस्से की तरह देखें क्योंकि उनका स्वरूप अल्पकालिक है और हमारी संभावनाओं पर हमारे विज़न व हमारे ऐतिहासिक मजबूरियों पर अधिक समान रूप से कोई क्षति नहीं पहुँचा सकते। मेरा मानना

है कि जब हम अपने सिद्धांतों को सामयिक संदर्भ में ढालेंगे तभी जाकर व्यवहार भी अधिक पारदर्शी व सार्थक होगा।

सिद्धांत व व्यवहार में बेहतर तालमेल व समरूपता की दिशा में हम बढ़ें तो यह एल के झा के उदार विचारों के प्रति उपकार होगा। राज्यों में अथवा राज्यों व केंद्र के बीच अपने को दूसरों से बड़ा दिखाने वाली बेइमान दुनिया में रहने से भारत की विकास संभावनाओं को साकार करने की अपनी क्षमता से हम भटकेंगे ही।

इस टिप्पणी के संदर्भ में कि जितनी देर मैं शोधक्षम रह सकता हूँ, उससे अधिक समय तक बाजार अटपटे रह सकते हैं, कहा जाता है कि जॉन मेनार्ड केन्स ने कहा है कि जब तथ्य व परिस्थितियां बदलती हैं, मैं अपना निर्णय बदल लेता हूँ – आप क्या करते हैं?

राजकोषीय संघवाद पर तथ्य व परिस्थितियां बदल गई हैं। समय आ गया है कि हमा अपनी सोच बदलें।

धन्यवाद